सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

पृष्ठभूमि

मंगलाचरण

(दोहा)

शुद्धातम अर पंचपद नमकर बारम्बार।
मणिप्रदीप प्रस्तुत करूँ तत्त्वारथ का सार॥

(रोला)

तत्त्वारथ का सार सूत्र में जो प्रतिपादन।
उमास्वामी ने किया परमपावन मनभावन॥
पूज्यपाद अकलंक सु विद्यानन्द महोदय।
टीकाकार महान संत सद्भाग्य दयोदय॥१॥
इन सबका ही सार सरल भाषा-शैली में।
जन-जन के हित हेतु सहज अनुपम शैली में॥
लिखने का है भाव भव्यजन इसे चाव से।
पढना बारम्बार प्रेम से भक्तिभाव से॥२॥

कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पानेवाले आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र से जैन समाज जितना अधिक परिचित है; उनके जीवन परिचय के संदर्भ में उतना ही अपरिचित है।

कहा जाता है कि आचार्य उमास्वामी आचार्य कुन्दकुन्द के पट्टशिष्य थे और विक्रम की प्रथम शताब्दी के अन्तिम काल में तथा द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतभूमि को सुशोभित कर रहे थे।

आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी उन गौरवशाली आचार्यों में हैं, **जिन्हें समग्र आचार्य परम्परा में पूर्ण प्रामाणिकता एवं असीम सम्मान प्राप्त है।** उनके सूत्र ग्रन्थ महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र अपर नाम मोक्षशास्त्र को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है; जो स्थान हिन्दूधर्म में गीता को, ईसाइयों में बाइबिल को और इस्लाम में कुरान को प्राप्त है। अधिकांश जैन - मुख्यत: माता-बहिने - इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं।

मात्र सात-आठ पृष्ठों में समाहित हो जानेवाली इस महानतम कृति के संदर्भ में कहा गया है कि -

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः।।

तत्त्वार्थसूत्र के दश अध्यायों के भाव को भलीभाँति जानकर उसका पाठ करने से एक उपवास का फल प्राप्त होता है - ऐसा कथन मुनिपुंगवों अर्थात् श्रेष्ठ मुनिराजों द्वारा किया गया है।

गागर में सागर - इस सूक्ति को सार्थक करनेवाला यह तत्त्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गये जैन ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है।

सूत्र पद की परिभाषा जयधवल में इसप्रकार प्राप्त होती है -

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्।
निर्दोषंहेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः।।[१]

जो थोड़े अक्षरों से संयुक्त हो, संदेह से रहित हो, जिसमें सार भरा हो, गूढ पदार्थों का निर्णय करनेवाला हो, निर्दोष हो, युक्तियुक्त हो और यथार्थ हो; उसे बुधजन सूत्र कहते हैं।

इस महान ग्रन्थ पर संस्कृत भाषा में आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि ने सर्वार्थसिद्धि नामक वृत्ति, आचार्य अकलंकदेव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक (सभाष्य) और आचार्य विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक (सभाष्य) नामक वार्तिक लिखे; जो आज उपलब्ध हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ से छपे तत्त्वार्थराजवार्तिक में जो बोल्ड टाइप में है और जिन पर नम्बर डले हैं; वे वार्तिक हैं और नम्बरों के बाद जो सामान्य टाइप में मेटर दिया गया है, वह भाष्य है। इसीप्रकार श्लोकवार्तिक में वार्तिक श्लोकों में है और भाष्य गद्य में है।

जिसमें सूत्रों के पदों का आश्रय लेकर प्रत्येक पद का विवेचन किया जाता है; उसे वृत्ति कहते हैं।

श्लोकवार्तिक में वार्तिक की परिभाषा इसप्रकार दी गई है -

वार्तिकं हि सूत्राणामनुपपत्ति चोदना तत्परिहारो विशेषाभिधानं प्रसिद्धम् - सूत्र का अवतार नहीं होने देने का तथा सूत्रों के अर्थ को सिद्ध न होने देने का ऊहापोह

१. पण्डित चेतनदास कृत, तत्त्वार्थसार वचनिका, पृष्ठ ३७

या तर्कणा करना और उसका परिहार करना तथा ग्रन्थ के विशेष अर्थ को प्रतिपादित करना **वार्तिक** है।[१]

सूत्र ग्रन्थों के विस्तृत विवेचन को भाष्य कहते हैं।[२]

कहा जाता है कि आचार्य समन्तभद्र ने इस पर **गंधहस्तिमहाभाष्य** नामक भाष्य लिखा था, जो आज अनुपलब्ध है। कहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण को आधार बनाकर लिखा गया देवागम स्तोत्र अर्थात् आप्तमीमांसा उस गंधहस्तिमहाभाष्य का ही मंगलाचरण है।

इस मंगलाचरणरूप **देवागमस्तोत्र** अर्थात् **आप्तमीमांसा** पर भी अकलंकदेव ने आठ सौ श्लोक प्रमाण **अष्टशती** नामक ग्रन्थ लिखा एवं आचार्य विद्यानन्द ने उक्त अष्टशती को गर्भित करते हुए आठ हजार श्लोक प्रमाण **अष्टसहस्री** नामक महान ग्रंथ लिखा।

इनके अतिरिक्त योगीन्द्रदेव कृत **तत्त्वप्रकाशिका,** अभयनन्दि कृत **तत्त्वार्थवृत्ति,** भास्करनन्दि कृत **सुखबोधातत्त्वार्थवृत्ति** आदि अनेक टीकायें संस्कृत भाषा में प्राप्त होती हैं।

हिन्दी भाषा में भी इस पर वचनिका के रूप में अनेक टीकायें लिखी गईं। आधुनिक विद्वानों ने भी इस पर कलम चलाई है। इसप्रकार यह जैनदर्शन का सर्वाधिक लोकप्रिय सर्वमान्य सूत्र ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ के दश अध्यायों में छोटे-बड़े कुल मिलाकर **३५७** सूत्र हैं और मंगलाचरण का एक छन्द है।

इसके नाम में मूल शब्द **'तत्त्वार्थ'** है। तत्त्वार्थों का अत्यन्त संक्षेप में प्रतिपादन होने से इस ग्रन्थ का नाम **तत्त्वार्थसूत्र** रखा गया। सूत्र का अर्थ ही संक्षिप्त होता है। मूल शब्द **तत्त्वार्थ** होने से ही सर्वार्थसिद्धि नामक इसकी टीका को **तत्त्वार्थवृत्ति,** राजवार्तिक नामक वार्तिक को **तत्त्वार्थवार्तिक** एवं श्लोकों में लिखे गये वार्तिक को **तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिक** कहा गया। इसप्रकार हम देखते हैं कि **इन ग्रन्थों में तत्त्वार्थों का सूत्र, वृत्ति और वार्तिकों में प्रतिपादन किया गया है।**

इसप्रकार सर्वप्रथम विक्रम की द्वितीय शताब्दी के आरंभ में आचार्य उमास्वामी द्वारा तत्त्वार्थों का सूत्र के रूप में प्रतिपादन किया गया।

१. जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश, भाग ३, पृष्ठ ५३६
२. आदर्श हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ ५९१

तदुपरान्त छठवीं शताब्दी में आचार्य पूज्यपाद अपर नाम देवनन्दि द्वारा उक्त सूत्रों में प्रतिपादित तत्त्वार्थों का विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए **बारह हजार श्लोक प्रमाण** तत्त्वार्थवृत्ति लिखी गई, जिसका नाम **सर्व अर्थ को सिद्ध करनेवाली होने से सर्वार्थसिद्धि रखा गया।**

उसके बाद विक्रम की आठवीं शताब्दी में आचार्य अकलंकदेव ने उक्त तत्त्वार्थों का विस्तार से विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए सोलह हजार श्लोक प्रमाण भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसको तत्त्वार्थवार्तिक, तत्त्वार्थराजवार्तिक अथवा अकेला **राजवार्तिक** कहा गया।

तदुपरान्त विक्रम की नौवीं शताब्दी में आचार्य विद्यानन्द ने विशेष विस्तार से प्रतिपादन के लिए बीस हजार श्लोकों में भाष्य सहित वार्तिक लिखे, जिसका नाम तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक रखा गया। इसे अकेले **श्लोकवार्तिक** नाम से भी जाना जाता है।

ध्यान रहे श्लोक प्रमाण में बत्तीस अक्षरों का एक श्लोक माना गया है। इसी के आधार पर ग्रन्थों के परिमाण की गणना की जाती रही है।

तत्त्वार्थों का सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के रूप में प्रतिपादन के अलावा अत्यधिक विस्तार से प्रतिपादन के लिए भाष्य भी लिखे गये।

कहते हैं कि विक्रम की द्वितीय शताब्दी के आचार्य समन्तभद्र ने इस पर चौरासी हजार श्लोक प्रमाण एक महाभाष्य लिखा था; जो अभी अनुपलब्ध है। एक भाष्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी लिखा गया है, जिसका नाम तत्त्वार्थाधिगम भाष्य है।

आचार्य कुन्दकुन्द कृत महान ग्रन्थ समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय पर अत्यन्त गंभीर टीकायें प्रस्तुत करनेवाले एवं पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय जैसे श्रावकाचार तथा लघुतत्त्वस्फोट जैसे स्तुति काव्य के लेखक दसवीं सदी के आचार्य अमृतचन्द्र ने भी तत्त्वार्थसूत्र को आधार बनाकर **तत्त्वार्थसार** नामक ग्रन्थ लिखा है; जो गद्य में न होकर पद्य में है।

उक्त ग्रन्थ में भी **तत्त्व** या **अर्थ** का नहीं, अपितु **तत्त्वार्थ** का ही विवेचन है। इसके साथ लगा 'सार' पद इस बात का सूचक है कि इस ग्रन्थ में अमृतचन्द्र के पूर्व लिखे गये तत्त्वार्थप्रतिपादक सभी शास्त्रों का सार समाहित है। यद्यपि यह बात परम सत्य है; तथापि तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर लिखे गये इस शास्त्र में आचार्य अकलंकदेव के तत्त्वार्थ-राजवार्तिक का विशेष आधार लिया गया है।

अनुष्टुप् (श्लोक) छन्दों में लिखे गये इस तत्त्वार्थसार नामक शास्त्र में कुल

मिलाकर ६८६ अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त सभी महान ग्रन्थों का मूल आधार एकमात्र आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र ही है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई सर्वार्थसिद्धि वृत्ति और तत्त्वार्थराजवार्तिक के संदर्भ में कहा गया है कि -

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्

प्रमाण शास्त्र में अकलंक का तत्त्वार्थराजवार्तिक और लक्षणशास्त्र में पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि मूल आधार ग्रन्थ हैं।

१. इसप्रकार हम देखते हैं कि प्रमाणशास्त्र और लक्षणशास्त्र का मूल आधार भी तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई टीकायें ही हैं।

२. इसीप्रकार न्यायशास्त्र के आधार ग्रंथ भी इस ग्रन्थ के मंगलाचरण पर लिखी आप्तमीमांसा और उसकी टीका अष्टशती व अष्टसहस्री हैं।

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि जैनदर्शन संबंधी प्रमाणशास्त्र, न्यायशास्त्र और लक्षणशास्त्र का मूल उद्गम यही ग्रंथराज है।

यह भी सर्वविदित ही है कि न्याय का सूत्र ग्रन्थ परीक्षामुख भी आचार्य अकलंकदेव कृत तत्त्वार्थराजवार्तिक के आधार से लिखा गया है। **न्यायशास्त्र में आचार्य माणिक्यनन्दि कृत परीक्षामुख सूत्र का वही स्थान है, जो स्थान सिद्धान्तशास्त्रों में तत्त्वार्थसूत्र का है।**

परीक्षामुख सूत्र पर लिखी गई अनंतवीर्य आचार्य कृत प्रमेयरत्नमाला नामक टीका और प्रभाचन्द्राचार्यकृत प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक महान ग्रन्थ का न्यायशास्त्र में वही स्थान है, जो स्थान सिद्धान्तशास्त्रों में सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिक का है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि सम्पूर्ण न्यायशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं का ऋणी है।

प्राचीनकाल में किसी भी विषय के प्रतिपादन के लिए सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और भाष्य लिखे जाते रहे हैं। जैनदर्शन में **तत्त्वार्थ** एक ऐसा विषय है, जिसका जानना मुक्तिमार्ग में अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि **मुक्तिमार्ग का मूल सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थों के श्रद्धान का ही नाम है।**

तत्त्वार्थ क्या है ? - इसका प्रतिपादन ही इन सभी ग्रन्थों का मूल प्रतिपाद्य है।

तत्त्वार्थ सात होते हैं, उनका कथन प्रथम अध्याय के चौथे सूत्र से ही आरंभ हो जाता है।

मोक्षमार्ग और मोक्ष का प्रतिपादन होने से इसे **मोक्षशास्त्र** भी कहते हैं। इसप्रकार इस ग्रन्थ के **तत्त्वार्थसूत्र** और **मोक्षशास्त्र** - ये दो नाम प्रसिद्ध हैं।

ध्यान रहे वृत्ति, वार्तिक, भाष्य एवं हिन्दी वचनिकायें - ये सब एक प्रकार से छोटी-बड़ी विभिन्न शैली में लिखी गई टीकायें ही हैं।

इसप्रकार इस छोटे से सूत्र ग्रन्थ पर लिखे गये गंभीर, विशाल और युक्तियुक्त ग्रन्थों की समृद्ध परम्परा है।

यह ग्रन्थराज जैन समाज द्वारा संचालित सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में निर्धारित है और भारतवर्ष के सभी जैन विद्यालयों में यह पढाया जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसार, प्रवचनसार और नियमसार ग्रन्थों पर लिखे गये मेरे अनुशीलनों को पढ़कर अनेक अध्यात्मप्रेमी आत्मार्थी बन्धुओं को यह तीव्रतम भाव आया कि मैं भी उक्त परम्परा को आधार बनाकर तत्त्वार्थों का विवेचन करूँ।

मुझे भी इसप्रकार का भाव था, पर जिन-अध्यात्म में विशेष रुचि होने से मेरी दृष्टि आचार्य कुन्दकुन्द पर ही केन्द्रित रही। विगत २२ वर्षों से मैं एक प्रकार से कुन्दकुन्दमय ही हो गया हूँ। इन दिनों मैंने आचार्य कुन्दकुन्द और उनकी कृतियों पर लगभग साढे सात हजार पृष्ठ लिखे हैं।

तत्त्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रंथ में जैनदर्शन का मूल प्रतिपाद्य अत्यन्त संक्षेप में है। यद्यपि यह परमसत्य है कि सूत्र ग्रंथ में तो संक्षिप्त कथन ही होता है; तथापि यह इतना अधिक संक्षिप्त हो गया है कि यह ग्रंथ जैनदर्शन के मूल प्रतिपाद्य का मात्र सूची-पत्र बनकर रह गया है।

जो कुछ भी विस्तार है; वह सब टीका ग्रंथों में ही है। टीका ग्रंथों में भरपूर अवकाश था। अत: उनमें वह सबकुछ भरने का प्रयास किया गया है कि जिसकी अत्यन्त आवश्यकता थी।

उन टीका ग्रंथों में कुछ तो बहुत विस्तारवाले ग्रंथ हैं और कुछ अत्यन्त गंभीर हैं; अत: उन पर भी टीकायें लिखी गईं, विभिन्न भाषाओं में उनके अनुवाद हुए; इसप्रकार एक बहुत बड़ा वटवृक्ष खड़ा हो गया है।

अन्तर की गहराई से मुझे ऐसा प्रतीत होता रहा है कि मुझे भी इस धारा में अपने

श्रद्धा सुमन समर्पित करना चाहिए। इससे **एक लाभ** तो यह होगा कि मुझे इनका कुछ गहरा अध्ययन हो जावेगा।

दूसरी बात यह भी है कि मेरे साहित्य के अध्येता अध्यात्मरुचिवाले पाठकों को सहज ही इस विषय का कुछ न कुछ परिचय हो जावेगा।

आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र और उस पर लिखी टीकाओं में भी मेरी गहरी रुचि रही है। उनका अध्ययन भी मैंने यथासाध्य किया ही है।

इस महाशास्त्र में अनेक ऐसे प्रसंग हैं; जिनके विशेष स्पष्टीकरण करने का भाव मुझे रहा है। मात्र उक्त प्रसंगों पर प्रकाश डालने की अपेक्षा सम्पूर्ण ग्रंथ पर प्रकाश डालना ही ठीक रहेगा - इस विचार से ही इस तत्त्वार्थमणिप्रदीप ग्रंथ का जन्म हो रहा है।

यह **तत्त्वार्थमणिप्रदीप** ग्रंथ एक प्रकार से तत्त्वार्थसूत्र की टीका ही है।

मुझे विश्वास है कि यह तत्त्वार्थमणिप्रदीप ग्रंथ परमतत्त्वार्थरूप निज भगवान आत्मा के साथ-साथ सभी तत्त्वार्थों पर प्रकाश डालने में सफल होगा। इस सरल-सुबोध कृति से वे सभी आत्मार्थी भाई-बहिन लाभान्वित होंगे; जो त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा के साथ-साथ प्रयोजनभूत तत्त्वार्थों से भी परिचित होना चाहते हैं।

यद्यपि इसप्रकार का भाव बहुत दिनों से चल रहा था; **तथापि काललब्धि आये बिना तो कुछ संभव नहीं है।**

लगता है अब इसकी काललब्धि आ गई है और मुझे तत्त्वार्थों की इस परम्परा पर लिखने का तीव्रतम भाव हो रहा है; पर इसका पूर्ण होना काललब्धि और होनहार पर निर्भर है; मेरा प्रयास तो रहेगा ही।

इसमें किसी को कुछ विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मैं इसे इस ढलती उम्र में अपनी चित्त शुद्धि के लिए लिख रहा हूँ; यदि इससे अन्य आत्मार्थी बन्धुओं को भी कुछ लाभ प्राप्त हो जावे तो मुझे प्रसन्नता होगी।

ध्यान रहे मेरी अध्यात्मरुचि का प्रतिफलन तो इसमें यत्र-तत्र होगा ही; पर मुख्य प्रतिपादन तो मूल ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयानुसार ही होगा।

यद्यपि प्रस्तावित इस ग्रन्थ के अनुशीलन में तत्त्वार्थसूत्र के संबंध में अद्यावधि उपलब्ध सभी साहित्य का यथासाध्य सहयोग लिया जायेगा, उपयोग किया जायेगा; तथापि अधिक विस्तार में न जाकर इसे मध्यमरूप में ही प्रस्तुत करने का विकल्प है; फिर यथासाध्य जो होगा, सो होगा। विशेष विकल्प करने से क्या लाभ है?

मंगलाचरण

(अनुष्टुभ्)

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वंदे तद्गुणलब्धये ।।

(हरिगीत)

मोक्षमार्ग के नेता एवं कर्मपर्वतों के भेदक।
और विश्व के सब तत्त्वों के ज्ञायक चेतन संवेदक।।
सद्गुण आप समान प्राप्त हों - यही भावना भाकर देव।
विनयपूर्वक करूँ वन्दना बारम्बार जिनेश्वर देव।।

मोक्षमार्ग के नेता, कर्मरूपी पर्वतों के भेदक एवं विश्व के सभी तत्त्वों के ज्ञायक हे जिनेश्वरदेव ! मैं आपके समान गुणों की प्राप्ति के लिए आपकी बारम्बार वंदना करता हूँ।

कर्मरूपी पर्वतों के भेदक अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय - इन चार घातिया कर्मों का अभाव कर देनेवाले एवं विश्व के सभी तत्त्वों अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय सहित सभी पदार्थों को जाननेवाले हे वीतरागी-सर्वज्ञ अरहंतदेव ! आप दिव्यध्वनि द्वारा सभी भव्यजीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं; इसलिए हितोपदेशी हैं, मोक्षमार्ग के नेता हैं, क्योंकि आप सबको मोक्षमार्ग में ले जानेवाले हैं।

उक्त गुणों की प्राप्ति मुझे भी हो - इस भावना से मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो; **वह आप्त है, सच्चा देव है।** आप्त की परिभाषा में समागत उक्त तीन विशेषणों को आधार बनाकर ही उक्त छन्द में सच्चे देव को, अरहंत परमेष्ठी को, तीर्थंकर अरहंत को नमस्कार किया गया है।

उक्त गुणों को आधार बनाकर ही आचार्य समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा, आचार्य विद्यानन्द ने आप्तपरीक्षा नामक ग्रन्थ लिखे हैं; जिनमें क्रमशः आप्त के स्वरूप पर मीमांसा की गई है, आप्त की परीक्षा की गई है। इसप्रकार यह मंगलाचरण भी अनेक ग्रन्थों का जनक है।

आचार्य समन्तभद्रकृत आप्तमीमांसा की टीकायें तो अष्टशती व अष्टसहस्री हैं ही; आचार्य विद्यानन्द कृत आप्तपरीक्षा की तीन हजार श्लोक प्रमाण टीका आचार्य श्री विद्यानन्द ने स्वयं ही लिखी है। यही कारण है कि उसे स्वोपज्ञटीका कहते हैं।

आप्तमीमांसा और उसकी टीकाओं में सर्वप्रथम सर्वज्ञता की सिद्धि सामान्यरूप से और विशेषरूप से की गई है।

सामान्य सर्वज्ञसिद्धि का आशय यह है कि लोक में सर्वज्ञ की सत्ता है या नहीं ? कोई व्यक्ति सर्वज्ञ हो सकता है या नहीं ? इस पर गंभीरता से मंथन कर अनेक तर्क और युक्तियों से यह सिद्ध करना कि लोक में सर्वज्ञ की सत्ता संभव है।

सामान्य सर्वज्ञसिद्धि हो जाने के उपरान्त पूर्वापर अविरोधी वचनों के आधार पर **अरहंत पद को प्राप्त किसी व्यक्ति विशेष को सर्वज्ञ सिद्ध करना विशेष सर्वज्ञसिद्धि है।**

आप्तमीमांसा में सामान्य सर्वज्ञसिद्धि करने के उपरान्त पूर्वापर अविरोधी वचनों के आधार पर अरहंत भगवान को सर्वज्ञ सिद्ध किया गया है। साथ में यह भी बताया गया है कि पूर्वापर विरोधी वचनों के कारण कपिलादि सर्वज्ञ नहीं हैं।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि यहाँ तो आप अरहंत पद में सर्वज्ञता सिद्ध कर रहे हैं; अतः यह विशेष सर्वज्ञसिद्धि कहाँ हुई ? अरहंत पद के सामान्य होने से यह भी एक प्रकार से सामान्य सर्वज्ञसिद्धि ही हुई।

उत्तर : ऐसा नहीं है; क्योंकि सामान्य सर्वज्ञसिद्धि में तो **यह सिद्ध किया जाता है कि इस लोक में सर्वज्ञ की सत्ता संभव है। सबको जानना, प्रत्यक्ष जानना असंभव नहीं है - मात्र यह सिद्ध करना ही सामान्य सर्वज्ञसिद्धि है।**

अरहंत पद को प्राप्त व्यक्ति सब द्रव्यों को (उनके गुण-पर्यायों सहित) एक समय में जानता है, जान लेता है - यह सिद्ध करना विशेष सर्वज्ञसिद्धि है।

इस पर यदि कोई यह कहे कि ऋषभदेव या महावीर को सर्वज्ञ सिद्ध करना विशेष सर्वज्ञसिद्धि क्यों नहीं है ?

तो उसका सहज उत्तर यही होगा कि ऋषभदेव या महावीर जन्म से लेकर देहान्त तक देह में रहनेवाले व्यक्ति का नाम है। ऋषभदेव या महावीर जन्म से सर्वज्ञ नहीं थे; किन्तु **अरहंत पद को प्राप्त व्यक्तिविशेष तो नियम से सर्वज्ञ होते ही हैं।**

अतः अरहंत को सर्वज्ञ सिद्ध करना ही विशेष सर्वज्ञसिद्धि है - यह कथन पूर्णतः निर्दोष है।

यही कारण है कि जैनागम में सर्वत्र यही कहा गया है कि **जिणेहिं णिद्दिट्ठा** - जिनेन्द्र भगवान ने कहा है, **भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं** - सर्वदर्शी अरहंत भगवान के द्वारा कहा गया है। कहीं भी यह नहीं कहा गया कि ऋषभदेव ने कहा या महावीर ने कहा।

ध्यान रहे, असि, मसि, कृषि आदि का उपदेश राजा ऋषभदेव ने दिया था, अरहंत भगवान ऋषभदेव ने नहीं, सर्वज्ञ भगवान ने नहीं।

यह तो आप जानते ही हैं कि अरहंत पद प्रगट करने की अपेक्षा उपादेय है; अत: हमें अरहंत बनना है, पर महावीर नहीं बनना है, ऋषभदेव भी नहीं बनना है।

प्रश्न : दीक्षा लेते समय नाम बदलने का कारण भी क्या यही हो सकता है ?

उत्तर : हो क्या सकता है, होता ही है; क्योंकि जिसप्रकार का शुद्ध सात्त्विक जीवन मुनि अवस्था में होता है; उसप्रकार का शुद्ध सात्त्विक जीवन उसके पूर्व गृहस्थ जीवन में कैसे हो सकता है ?

प्रश्न : इसप्रकार तो तीर्थंकर पद के बारे में भी प्रश्न खड़ा हो सकता है ?

उत्तर : नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में होने से तीर्थंकर तो नियम से सर्वज्ञ होते हैं।

वस्तुत: बात तो यह है कि तेरहवें गुणस्थान के पहले कोई व्यक्ति न तो सर्वज्ञ है, न अरहंत है और न तीर्थंकर ही है। ये तीनों अवस्थाएँ एक साथ ही प्रगट होती हैं। वस्तुत: बात यह है कि यहाँ तेरहवें गुणस्थानवर्ती तीर्थंकर अरहंत भगवान को ही आप्त कहा गया है।

इसप्रकार आप्तमीमांसा में सर्वप्रथम दोनों सर्वज्ञसिद्धियों को सफलतापूर्वक स्थापित करने के बाद स्याद्वाद के माध्यम से अनेकान्त की स्थापना की गई है।

आप्तपरीक्षा में मुख्यरूप से जगतकर्ता ईश्वर, सुगत, कपिल आदि की परीक्षा करते समय अनेक तर्क और युक्तियों से यह सिद्ध किया गया है कि वे सर्वज्ञ नहीं थे और अन्त में **अरहंत भगवान सर्वज्ञ थे - यह सिद्ध किया है।**

इसप्रकार सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का मूल आधार यह तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ और उसकी टीकायें ही रही हैं।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ मंगलाचरण में तीर्थंकर अरहंत परमात्मा की स्तुति में न तो किसी भी प्रकार के अतिशयों की चर्चा की गई है और न किसी भी प्रकार की लौकिक कार्यों की सिद्धि, विषयभोगों की प्राप्ति, शत्रुओं के पराभव एवं धन-सम्पत्ति प्राप्ति की कामना की गई है।

वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति वीतरागता और सर्वज्ञता की प्राप्ति के लिए ही वीतरागभाव से की गई है; उनकी दिव्यध्वनि सुनने की भावना से की गई है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि इस मंगलाचरण के छन्द को आधार बनाकर लिखा गया आचार्य समन्तभद्र कृत देवागम स्तोत्र व अन्य स्तुति साहित्य न केवल सर्वोत्कृष्ट एवं आदर्श स्तुति साहित्य है, अपितु जैन न्याय का मूल उद्भव स्थान भी है।

आज के स्तुति साहित्य में तो अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गई हैं। वीतरागी सर्वज्ञ भगवान को कर्ता-धर्त्ता बताकर, उनसे भोगों की भीख माँगना, अनेक प्रकार के संकटों से उबारने की प्रार्थना करना; यहाँ तक कि कल्पित शत्रुओं के विनाश करने की प्रार्थना करना तो आम बात हो गई है।

यद्यपि जैनदर्शन के मूल सिद्धान्तों के विरोधी इसप्रकार के स्तुति साहित्य को जैन स्तुति साहित्य कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता; तथापि व्यर्थ के विवाद से बचने के लिए यह सब व्यवहारनय से किया गया उपचरित कथन है - ऐसा कहकर-मानकर उपेक्षणीय है।

तात्पर्य यह है कि एकमात्र वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा ही इष्टदेव हैं; और उनकी दिव्यध्वनि में समागत वीतरागी तत्त्वज्ञान ही एकमात्र उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है।

वस्तुत: विचार किया जाय तो एकमात्र त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा ही जानने योग्य है, निजरूप जानने-मानने योग्य है, उसमें ही अपनापन स्थापित करना है, उसमें ही जमना-रमना है; इसका नाम ही निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। एकमात्र यही साक्षात् मुक्ति का मार्ग है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि तीर्थंकर अरहंत भगवान; दिव्यध्वनि के माध्यम से मुक्तिमार्ग का स्वरूप बताकर भव्यजीवों को मुक्तिमार्ग में ले जाते हैं; इसलिए **वे मोक्षमार्ग के नेता हैं।** चार घातिया कर्म के उदय से होनेवाले मोह-राग-द्वेषादि अठारह दोषों से रहित होने से कर्मरूपी पर्वतों के भेदक **पूर्ण वीतरागी हैं।** केवलज्ञान के धारक होने से अपने आत्मा के साथ-साथ द्रव्य-गुण-पर्याय सहित लोक के समस्त पदार्थों को हाथ पर रखे हुए आंवले के समान जानने के कारण **सर्वज्ञ** हैं।

उनकी वाणी पूर्वापर विरोध से रहित पूर्णत: सत्य है। **असत्य या तो अज्ञान से बोला जाता है या फिर राग-द्वेष से।** वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान के न तो राग-द्वेष हैं और न अज्ञान है; अत: उनकी वाणी सत्य है, अत्यन्त हितकारी है। **जो व्यक्ति उनके बताये मुक्तिमार्ग पर चलता है, वह भी वीतरागी-सर्वज्ञ हो जाता है, अनंत सुख-शान्ति को प्राप्त करता है; यही कारण है कि उन्हें हितोपदेशी कहा जाता है।**

इसप्रकार अनेक शास्त्रों के मूलाधार इस मंगलाचरण के छन्द में **वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी अरहंत भगवान को, उन जैसा बनने की भावना से नमस्कार किया गया है।**

पहला अध्याय
मोक्षमार्ग

मंगलाचरण के उपरान्त अब सर्वप्रथम मोक्षमार्ग की चर्चा आरंभ करते हैं। यह महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र **मोक्षमार्ग के निरूपण से आरंभ होता है और मोक्ष के स्वरूप प्रतिपादन पर समाप्त होता है।** इसके दशवें अर्थात् अन्तिम अध्याय में मोक्षतत्त्व का ही निरूपण है। इसतरह इसका मोक्षशास्त्र नाम भी सार्थक ही है।

अब सबसे पहले मोक्षमार्ग का स्वरूप समझाते हैं।

मानो सांसारिक दु:खों से संतप्त कोई आसन्न भव्यजीव; आचार्य उमास्वामी से पूछ रहा हो कि हे प्रभो ! इन दु:खों से, राग-द्वेष से, कर्मों से छूटने का उपाय क्या है, इनसे मुक्त होने का उपाय क्या है ?

उसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं –

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: ।।१।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है, सांसारिक दु:खों से छूटने का यही एकमात्र उपाय है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – ये तीन अलग-अलग तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं, अपितु तीनों मिलकर अभेदरूप एक मोक्षमार्ग है; यह बताने के लिए उक्त सूत्र के **मोक्षमार्ग:** – इस पद में एक वचन का प्रयोग किया गया है।

दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आदि में लगा हुआ सम्यक् पद मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के निषेध के लिए है; अत: इस सम्यक् पद को दर्शन, ज्ञान और चारित्र – इन तीनों के साथ लगाना चाहिए; क्योंकि यह पद आदि दीपक है।

जो पद वाक्य के आरंभ में लगा हो और वाक्य में समागत अनेक महत्त्वपूर्ण पदों के साथ लगाना आवश्यक हो, उसे **आदि दीपक** कहते हैं। इसीप्रकार जो पद वाक्य के **मध्य** या **अन्त** में हो, पर उसे वाक्य में समागत अनेक महत्त्वपूर्ण पदों के साथ लगाना आवश्यक हो तो उसे क्रमश: **मध्यदीपक या अन्तदीपक** कहते हैं।

जिसप्रकार दीपक को चाहे घर के आदि में रखें, चाहे मध्य में रखें या अन्त में रखें; वह दीपक अपनी सामर्थ्य के अनुसार सम्पूर्ण घर को प्रकाशित करता है; उसीप्रकार यहाँ **सम्यक् पद** दर्शन, ज्ञान और चारित्र – इन तीनों को प्रकाशित करता है, तीनों में लगकर विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि करता है, **उन्हें निर्दोष बनाता है।**

हम यह भी कह सकते हैं कि दर्शन के साथ लगा सम्यक् पद तत्त्वार्थों के संबंध में या आत्मतत्त्व के संबंध में होनेवाले **विपरीत अभिप्राय के निषेध के लिए है;** ज्ञान के साथ लगा सम्यक् पद तत्त्वार्थों या आत्मतत्त्व के संबध में किसी भी प्रकार के संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरूप **अज्ञान के निषेध के लिए है** और चारित्र के साथ लगा सम्यक् पद **अज्ञानपूर्वक होनेवाले आचरण के निषेध के लिए है।**

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों की एकता ही सच्चा मोक्षमार्ग है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि यदि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है तो क्या मुनिलिंग धारण करना, व्रत-उपवासादि करना मुक्तिमार्ग नहीं है ?

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए पण्डित टोडरमलजी लिखते हैं –

''वहाँ कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं। कोई कारण तो ऐसे होते हैं, जिनके हुए बिना तो कार्य नहीं होता, और जिनके होने पर कार्य हो या न भी हो। जैसे – मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता; परन्तु मुनिलिंग धारण करने पर मोक्ष होता भी है और नहीं भी होता।

तथा कितने ही कारण ऐसे हैं कि मुख्यत: तो जिनके होने पर कार्य होता है, परन्तु किसी के बिना हुए भी कार्यसिद्धि होती है। जैसे – अनशनादि बाह्य तप का साधन करने पर मुख्यत: मोक्ष प्राप्त करते हैं; परन्तु भरतादिक के बाह्य तप किये बिना ही मोक्ष की प्राप्ति हुई।

तथा कितने ही कारण ऐसे हैं, जिनके होने पर कार्यसिद्धि होती ही होती है, और जिनके न होने पर सर्वथा कार्यसिद्धि नहीं होती। जैसे – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता होने पर तो मोक्ष होता ही होता है और उनके न होने पर सर्वथा मोक्ष नहीं होता।

ऐसे यह कारण कहे, उनमें अतिशयपूर्वक नियम से मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना।

इन सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र में एक भी न हो तो मोक्षमार्ग नहीं होता।[१]''

इसप्रकार हम देखते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की एकता ही सच्चा मोक्षमार्ग है।

यद्यपि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की चर्चा आगे यथास्थान पूरे विस्तार के साथ होगी; तथापि उन्हें सामान्यरूप से यहाँ भी जान लेना उपयोगी है।

जीवादि तत्त्वार्थों को भलीभाँति जानकर उनका **श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है;** उन्हें स्व-पर भेदविज्ञानपूर्वक **भलीभाँति जानना सम्यग्ज्ञान** है और सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानपूर्वक **राग-द्वेष से निर्वृत्त होना सम्यक्चारित्र है।**

यदि निश्चयनय से विचार करें तो अपने में अपनापन ही सम्यग्दर्शन है, स्वयं को स्वयंरूप जानना सम्यग्ज्ञान है और स्वयं में ही जम जाना, रम जाना, समा जाना सम्यक्चारित्र है।

छहढाला नामक ग्रन्थ में पण्डित दौलतरामजी निश्चय रत्नत्रय अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक्चारित्र का स्वरूप अत्यन्त संक्षेप में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनों सो सम्यग्ज्ञान कला है।।
आपरूप में लीन भये थिर सम्यक् चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये हेतु नियत को होई।।[२]

परपदार्थों से भिन्न अपने आत्मा में ही रुचि होना अर्थात् अपनेपन का भाव होना ही **निश्चय सम्यग्दर्शन है** और वह निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मकल्याणकारी होने से अत्यन्त भला है, अच्छा है।

अपने आत्मा को जानना, निजरूप जानना ही **निश्चय सम्यग्ज्ञान है।** तात्पर्य यह है कि ज्ञान की कला अपने आत्मा को जानने में ही है, आत्मा को निजरूप जानने में ही है।

अपने आत्मा में लीन होना, स्थिर होना, आत्मा में ही जम जाना, रम जाना ही **निश्चय सम्यक्चारित्र है।**

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३१३-३१४
२. छहढाला, तीसरी ढाल, छन्द २

इसप्रकार निश्चयरत्नत्रय का निरूपण करके अब व्यवहार मोक्षमार्ग की चर्चा करेंगे; जो इस निश्चय मोक्षमार्ग (रत्नत्रय) का हेतु है।

इसके बाद छहढाला की तीसरी ढाल में व्यवहारचारित्र का विस्तार से निरूपण है।

न केवल इस मोक्षशास्त्र नामक शास्त्र का, अपितु सम्पूर्ण जिनागम का एकमात्र मूल प्रतिपाद्य ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही हैं; क्योंकि इन तीनों की उपलब्धि ही एकमात्र अनंत दु:खों से मुक्ति का उपाय है, मुक्तिमार्ग है।

जिन भव्यजीवों को अनंत दु:खों से मुक्त होना हो, वे इस मुक्तिमार्ग का सेवन करें, रत्नत्रय को धारण करें। उनका कल्याण अवश्य होगा।।१।।

(क्रमश:)

सुख अर्थात् मोक्ष। आत्मा की मोक्षदशा ही सुख है - इसके अलावा मकान में, पैसे में, राग में कहीं सुख नहीं है; धर्मी को आत्मा सिवाय कहीं सुखबुद्धि नहीं है। चैतन्य के बाहर किसी प्रवृत्ति में कहीं सुख है ही नहीं। आत्मा के मुक्तस्वभाव के अनुभव में सुख है। सम्यग्दृष्टि ने ऐसे आत्मा का निश्चय किया है और उसके सुख का स्वाद चखा है। जो अनुभव द्वारा मोक्ष को साक्षात् साध रहे हैं - ऐसे मुनि को अत्यन्त उल्लास और भक्ति से वह आहारदान देता है।

आनन्दस्वरूप आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता मोक्ष का कारण है और बीच के व्रतादि शुभपरिणाम पुण्यबंध के कारण हैं। आत्मा के आनन्द सागर को उछालकर उसमें जो मग्न है - ऐसे नग्न मुनि रत्नत्रय को साध रहे हैं, उसके निमित्तरूप देह है और देह के टिकने का कारण आहार है, इसलिये जिसने भक्ति से मुनि को आहार दिया, उसने मोक्षमार्ग दिया अर्थात् उसके भाव में मोक्षमार्ग टिकने का आदर हुआ। इसप्रकार भक्ति से आहारदान देने वाला श्रावक इस दु:षमकाल में मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति का कारण है। धर्मात्मा श्रावक ऐसा समझकर मुनि आदि सत्पात्र को रोज भक्ति से दान देता है। अहो ! मेरे घर कोई धर्मात्मा संत पधारें, ज्ञान-आनन्द को भोजन करनेवाले कोई संत मेरे घर पधारें तो भक्ति से उन्हें भोजन दूँ - ऐसा भाव गृहस्थ श्रावक को रोज-रोज आता है।

- श्रावकधर्मप्रकाश, पृष्ठ 73